श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

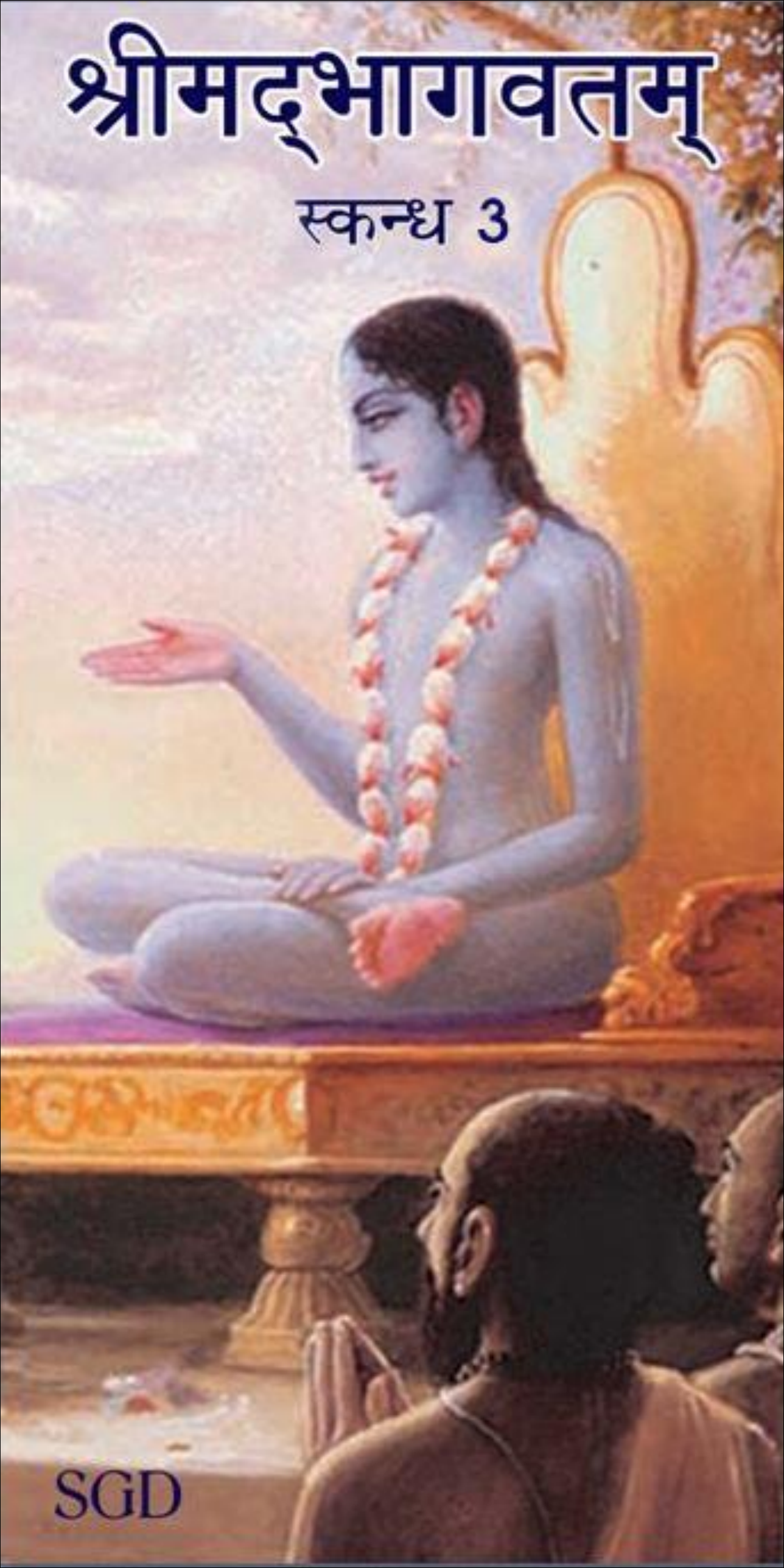

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 16

वैकुण्ठ के दो द्वारपालों, जय-विजय को मुनियों द्वारा शाप

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: ब्रह्माजी ने कहा : इस तरह मुनियों को उनके मनोहर शब्दों के लिए बधाई देते हुए भगवद्धाम में निवास करनेवाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने इस प्रकार कहा।

श्लोक 2: भगवान् ने कहा : जय तथा विजय नामक मेरे इन परिचरों ने मेरी अवज्ञा करके आपके प्रति महान् अपराध किया है।

श्लोक 3: हे मुनियो, आप लोगों ने उन्हें जो दण्ड दिया है उसका मैं अनुमोदन करता हूँ, क्योंकि आप मेरे भक्त हैं।

श्लोक 4: मेरे लिए ब्राह्मण सर्वोच्च तथा सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति है। मेरे सेवकों द्वारा दिखाया गया अनादर वास्तव में मेरे द्वारा प्रदर्शित हुआ है, क्योंकि वे द्वारपाल मेरे सेवक हैं। इसे मैं अपने द्वारा किया गया अपराध मानता हूँ, इसलिए मैं घटी हुई इस घटना के लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ।

श्लोक 5: किसी सेवक द्वारा किये गये गलत कार्य से सामान्य तौर पर लोग उसके स्वामी को दोष देते हैं जिस तरह शरीर के किसी भी अंग पर श्वेत कुष्ट के धब्बे सारे चमड़ी को दूषित बना देते हैं।

श्लोक 6: सम्पूर्ण संसार में कोई भी व्यक्ति, यहाँ तक कि चण्डाल भी जो कुत्ते का मांस पका कर और खा कर जीता है, वह भी तुरन्त शुद्ध हो जाता है यदि वह मेरे नाम, यश आदि के गुणगान रूपी अमृत में कान से सुनते हुए स्नान करता है। अब आप

लोगों ने निश्चित रूप से मेरा साक्षात्कार कर लिया है, अतएव मैं अपनी ही भुजा को काटकर अलग करने में तनिक संकोच नहीं करूँगा, यदि इसका आचरण आपके प्रतिकूल लगे।

श्लोक 7: भगवान् ने आगे कहा : चूँकि मैं अपने भक्तों का सहायक हूँ, इसलिए मेरे चरणकमल इतने पवित्र बन चुके हैं कि वे तुरन्त ही सारे पापों को धो डालते हैं और मुझे ऐसा स्वभाव प्राप्त हो चुका है कि देवी लक्ष्मी मुझे छोड़ती नहीं, यद्यपि

उसके प्रति मेरा कोई लगाव नहीं है और अन्य लोग उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं तथा उसकी रंचमात्र कृपा पाने के लिए भी पवित्र व्रत रखते हैं।

श्लोक 8: यज्ञाग्नि में, जो मेरे ही निजी मुखों में से एक है, यज्ञकर्ताओं के द्वारा डाली गई आहुतियों में मुझे उतना स्वाद नहीं मिलता जितना कि घी से सिक्त उन व्यंजनों से जो उन ब्राह्मणों के मुख में अर्पित किये जाते हैं जिन्होंने अपने कर्मों के फल मुझे

अर्पित कर दिये हैं और जो मेरे प्रसाद से सदैव तुष्ट रहते हैं।

श्लोक 9: मैं अपनी अबाधित अन्तरंगा शक्ति का स्वामी हूँ तथा गंगा जल मेरे पाँवों को धोने से निकलता हुआ जल है। वही जल जिसे शिवजी अपने सिर पर धारण किए हुए हैं, उनको तथा तीनों लोकों को पवित्र करता है। यदि मैं वैष्णव के पैरों की धूल को अपने सिर पर धारण करूँ, तो मुझे ऐसा करने से कौन मना करेगा?

श्लोक 10: ब्राह्मण, गौवें तथा निस्सहाय प्राणी मेरे ही शरीर हैं। जिन लोगों की निर्णय शक्ति अपने पाप के कारण क्षतिग्रस्त हो चुकी है वे इन्हें मुझसे पृथक् रूप में देखते हैं। वे क्रुद्ध सर्पों के समान हैं और वे पापी पुरुषों के अधीक्षक यमराज के गीध जैसे दूतों की चोचों से क्रोध में नोच डाले जाते हैं।

श्लोक 11: दूसरी ओर ऐसे लोग जो हृदय में पुलकित रहते हैं और अमृततुल्य हँसी से आलोकित अपने कमलमुखों से ब्राह्मणों द्वारा कटु वचन

बोलने पर भी उनका आदर करते हैं, वे मुझे मोह लेते हैं। वे ब्राह्मणों को मुझ जैसा ही मानते हैं और प्रियवचनों से उनकी प्रशंसा करके उन्हें उसी तरह शान्त करते हैं जिस तरह पुत्र अपने क्रुद्ध पिता को प्रसन्न करता है या मैं तुम लोगों को शान्त कर रहा हूँ।

श्लोक 12: मेरे इन सेवकों ने अपने स्वामी के मनोभाव को न जानते हुए आपके प्रति अपराध किया है, इसलिए मैं इसे अपने प्रति किया गया अनुग्रह मानूँगा यदि आप यह आदेश दें कि वे मेरे पास शीघ्र ही लौट

आयें तथा मेरे धाम से उनका निर्वासन-काल शीघ्र ही समाप्त हो जाय।

श्लोक 13: ब्रह्मा ने आगे कहा : यद्यपि मुनियों को क्रोध रूपी सर्प ने डस लिया था, किन्तु उनकी आत्माएँ भगवान् की उस मनोहर तथा तेजपूर्ण वाणी को सुनकर अघाई नहीं थीं जो वैदिक मंत्रों की शृंखला के समान थी।

श्लोक 14: भगवान् की उत्कृष्ट वाणी इसके गहन आशय तथा इसके अत्यधिक गहन महत्व के कारण समझी जाने में कठिन थी। मुनियों ने

उसे कान खोलकर सुना तथा उस पर मनन भी किया। किन्तु सुनकर भी वे यह नहीं समझ पाये कि भगवान् क्या करना चाह रहे हैं।

श्लोक 15: तो भी चारों ब्राह्मण मुनि उन्हें देखकर अतीव प्रसन्न थे और उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीरों में रोमांच का अनुभव किया। तब उन भगवान् से जिन्होंने अपनी योगमाया से परम पुरुष की बहुमुखी महिमा को प्रकट किया था, वे इस प्रकार बोले।

श्लोक 16: ऋषियों ने कहा : हे भगवन्, हम यह नहीं जान पा रहे कि

आप हमारे लिए क्या करना चाहते हैं, क्योंकि आप सबों के परम शासक होते हुए भी हमारे पक्ष में बोल रहे हैं मानो हमने आपके साथ कोई अच्छाई की हो।

श्लोक 17: हे प्रभु, आप ब्राह्मण संस्कृति के परम निदेशक हैं। ब्राह्मणों को सर्वोच्च पद पर आपके द्वारा माना जाना अन्यों को शिक्षा देने के लिए आपका उदाहरण है। वस्तुत: आप न केवल देवताओं के लिए, अपितु ब्राह्मणों के लिए भी परम पूज्य विग्रह हैं।

श्लोक 18: आप सारे जीवों की शाश्वत वृत्ति के स्रोत हैं और भगवान् के नाना स्वरूपों द्वारा आपने सदैव धर्म की रक्षा की है। आप धार्मिक नियमों के परम लक्ष्य हैं और हमारे मत से आप अक्षय तथा शाश्वत रूप से अपरिवर्तनीय हैं।

श्लोक 19: भगवान् की कृपा से योगीजन तथा अध्यात्मवादी समस्त भौतिक इच्छाओं को छोड़कर अज्ञान को पार कर जाते हैं। इसलिए यह सम्भव नहीं कि कोई परमेश्वर पर अनुग्रह कर सके।

श्लोक 20: जिनके चरणों की धूल अन्य लोग अपने शिरों पर धारण करते हैं, वहीं लक्ष्मीदेवी आपकी पूर्व निर्धारित सेवा में रहती हैं, क्योंकि वे उन भौंरों के राजा के धाम में स्थान सुरक्षित करने के लिए उत्सुक रहती हैं, जो आपके चरणों पर किसी धन्य भक्त के द्वारा अर्पित तुलसीदलों की ताजी माला पर मँडराता है।

श्लोक 21: हे प्रभु, आप अपने शुद्ध भक्तों के कार्यों के प्रति अत्यधिक अनुरक्त रहते हैं फिर भी आप उन लक्ष्मीजी से कभी अनुरक्त नहीं रहते

जो निरन्तर आपकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगी रहती हैं। अतएव आप उस पथ की धूल द्वारा कैसे शुद्ध हो सकते हैं जिन पर ब्राह्मण चलते हैं, और अपने वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह के द्वारा आप किस तरह महिमामंडित या भाग्यशाली बन सकते हैं?

श्लोक 22: हे प्रभु, आप साक्षात् धर्म हैं। अत: आप तीनों युगों में अपने को प्रकट करते हैं और इस तरह इस ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं जिसमें चर तथा अचर प्राणी रहते हैं। आप शुद्ध सत्त्व रूप तथा समस्त आशीषों को

प्रदान करने वाली कृपा से देवताओं तथा द्विजों के रजो तथा तमो गुणों को भगा दें।

श्लोक 23: हे प्रभु, आप सर्वोच्च द्विजों के रक्षक हैं। यदि आप पूजा तथा मृदु वचनों को अर्पित करके उनकी रक्षा न करें तो निश्चित है कि पूजा का शुभ मार्ग उन सामान्यजनों द्वारा परित्यक्त कर दिया जाएगा जो आपके बल तथा प्रभुत्व पर कर्म करते हैं।

श्लोक 24: प्रिय प्रभु, आप नहीं चाहते कि शुभ मार्ग को विनष्ट किया

जाय, क्योंकि आप समस्त शिष्टाचार के आगार हैं। आप सामान्य लोगों के लाभ हेतु अपनी बलवती शक्ति से दुष्ट तत्त्व को विनष्ट करते हैं। आप तीनों सृष्टियों के स्वामी तथा पूरे ब्रह्माण्ड के पालक हैं। अतएव आपके विनीत व्यवहार से आपकी शक्ति घटती नहीं, प्रत्युत इस विनम्रता द्वारा आप अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं।

श्लोक 25: हे प्रभु, आप इन दोनों निर्दोष व्यक्तियों को या हमें भी जो दण्ड देना चाहेंगे उसे हम बिना द्वैत के स्वीकार करेंगे। हम जानते हैं

कि हमने दो निर्दोष व्यक्तियों को शाप दिया है।

श्लोक 26: भगवान् ने उत्तर दिया : हे ब्राह्मणो, यह जान लो कि तुमने उनको जो दण्ड दिया है, वह मूलत: मेरे द्वारा निश्चित किया गया था, अत: वे आसुरी परिवार में जन्म लेने के लिए पतित होंगे। किन्तु वे क्रोध द्वारा वर्धित मानसिक एकाग्रता द्वारा मेरे विचार में मुझसे दृढ़तापूर्वक संयुक्त होंगे और शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेंगे।

श्लोक 27: ब्रह्माजी ने कहा : वैकुण्ठ के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को आत्मज्योतित वैकुण्ठलोक में देखने के बाद मुनियों ने वह दिव्य धाम छोड़ दिया।

श्लोक 28: मुनियों ने भगवान् की प्रदक्षिणा की, उन्हें नमस्कार किया तथा दिव्य वैष्णव ऐश्वर्य को जान लेने पर वे अत्यधिक हर्षित होकर लौट आये।

श्लोक 29: तब भगवान् ने अपने सेवकों जय तथा विजय से कहा : इस स्थान से चले जाओ, किन्तु डरो मत।

तुम लोगों की जय हो। यद्यपि मैं ब्राह्मणों के शाप को निरस्त कर सकता हूँ, किन्तु मैं ऐसा करूँगा नहीं। प्रत्युत इसे मेरा समर्थन प्राप्त है।

श्लोक 30: वैकुण्ठ से यह प्रस्थान लक्ष्मीजी ने पहले ही बतला दिया था। वे क्रुद्ध थीं, क्योंकि जब उन्होंने मेरा धाम छोड़ा और वे फिर लौटीं तो तुमने उन्हें द्वार पर रोक लिया जब कि मैं सो रहा था।

श्लोक 31: भगवान् ने जय तथा विजय नामक दोनों वैकुण्ठवासियों को आश्वस्त किया : क्रोध में योगाभ्यास

द्वारा तुम ब्राह्मणों की अवज्ञा करने के पाप से मुक्त हो जाओगे और अत्यल्प अवधि में मेरे पास वापस आ जाओगे।

श्लोक 32: वैकुण्ठ के द्वार पर इस प्रकार बोलकर भगवान् अपने धाम लौट गये जहाँ पर अनेक स्वर्गिक विमान तथा सर्वोपरि सम्पत्ति तथा चमक-दमक रहती है।

श्लोक 33: किन्तु वे दोनों द्वारपाल, जो कि देवताओं में सर्वश्रेष्ठ थे, जिनका सौन्दर्य तथा कान्ति ब्राह्मणों के शाप से उतर गए थे, खिन्न

हो गये और भगवान् के धाम वैकुण्ठ से नीचे गिर गये।

श्लोक 34: तब, जब जय तथा विजय भगवान् के धाम से गिरे तो अपने भव्य विमानों में बैठे हुए सारे देवताओं ने निराश होकर उत्कट हाहाकार किया।

श्लोक 35: ब्रह्मा ने आगे कहा : भगवान् के उन दो प्रमुख द्वारपालों ने अब दिति के गर्भ में प्रवेश किया है और कश्यप मुनि के बलशाली वीर्य से वे आवृत हो चुके हैं।

श्लोक 36: यह इन जुड़वे असुरों का तेज है, जिसने तुम सबों को विचलित किया है, क्योंकि इसने तुम्हारी शक्ति को कम कर दिया है। किन्तु मेरी शक्ति में कोई इसका उपचार नहीं है, क्योंकि भगवान् स्वयं ही यह सब करना चाहते हैं।

श्लोक 37: हे प्रिय पुत्रो, भगवान् प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता हैं और वे ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के लिए उत्तरदायी हैं। उनकी अद्भुत सृजनात्मक शक्ति योगमाया योगेश्वरों तक से आसानी से नहीं

समझी जा सकती। सबसे प्राचीन पुरुष भगवान् ही हमें बचा सकते हैं। किन्तु इस विषय पर विचार-विमर्श करने से हम उन की ओर से और क्या कर सकते हैं?

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव